पेरिस
६ जुलाई, २००६

संदेश संख्या – १००

स्वाध्याय प्रक्रिया

स्वाध्याय प्रक्रिया ही अध्यात्म है । सामान्यतः 'अध्यात्म' शब्द का अनुवाद 'स्पिरिचुअल' के रूप में किया जाता है और पाठक अपने पूर्व के संस्कारों और विचारों के आधार पर इस शब्द का गलत एवं गूढ़ अर्थ लगा लेता है । अध्यात्म है–अध्य+आत्म । यह आत्म अर्थात् आत्मचेतना या मैं–पना पर विशेष रूप से ध्यान करने का जोरदार आह्वान है, जो 'ध्य' के पूर्व लगे 'अ' द्वारा बताया गया है। यहाँ ''ध्याता बिना ध्यान'' का पावन सुझाव है क्योंकि ध्याता, अतीत का दबाव एवं पूर्वाग्रह होता है जबकि ध्यान गहन अस्तित्व में बोध की गतिशीलता (न कि अवधारणा और निष्कष) है । आत्मा को साधारणतः ''सोल'' कहा जाता हैं । सोल या आत्मा के संबंध में कोई कुछ भी नहीं जानता। यह सब विभिन्न विश्वास–पद्धतियों पर आधारित उधारी जानकारी मात्र है, जिसकी पूर्ति माफिया रूपी संगठित धर्म द्वारा की जाती है । यदि कोई ''आत्मा'' पर ध्यान करने का प्रयास करता है तो वह स्वयं को विश्वास पद्धतियों से प्राप्त, मानसिक धारणा एवं अवधारणा, भ्रांति एवं कपोल कल्पना, अटकलबाजी एवं पूर्वानुमान आदि के प्रति उपलब्ध करता है । अतः अध्यात्म तथाकथित स्प्रिचुअलिटी नहीं है। यह समझदारी की ऊर्जा में होना है जो ''मैं'' रहित अवस्था में चेतना के अवयवों पर ध्यान करने के योग्य बनाता है अर्थात् कुछ विशिष्ट बनने का तब भ्रम नहीं होता। अध्यात्म या स्वाध्याय विचारक (अतीत का दबाव) और विचार (भविष्य के लिए प्रक्षेपण) के गलियारे में केवल विचरना नहीं है । यह वर्तमान के पूर्ण अद्वैत में शान्त सजगता की गतिशलिता है । ''मैं'' रूपी विभाजन और इससे उत्पन्न द्वन्द्व और दुःख से संबंधित सत्य के उद्घाटन में विचार का कोई योगदान नहीं । स्व+अध्याय=स्वाध्याय का अर्थ है भ्रांति रूपी ''मैं'' (स्व) के ऊपर गहन ध्यानशील जागृति (अध्याय) ।

अध्यात्म के संबंध में उपलब्ध पूर्वधारणाओं एवं विचारों के जाल में फँसकर सान्त्वना एवं राहत प्राप्ति की निराशोन्मत्त प्रवृत्ति से स्वाध्याय का कोई संबंध नहीं। वस्तुतः स्वाध्याय के लिए बहुत अच्छे मस्तिष्क की आवश्यकता होती है जो विभेदकारी चित्तवृत्ति के अवयवों में उत्पन्न होने वाले विभिन्न विचारों की गतिशीलता के प्रति सूक्ष्मतापूर्वक सावधान और सजग रह सके। विश्लेषण, तर्क एवं प्रतिक्रिया में मुग्ध रहना अध्यात्म नहीं हैं। यह ''मैं'' का पुनरलंकरण, पुनर्स्थापना, पुनर्समायोजन और नवीनीकरण नहीं है और न ही मानसिक समय के संदर्भ में इसकी गतिविधियाँ। दर्शन की अग्नि में ''मैं'' रूपी द्रष्टा तत्क्षण भस्मीभूत हो जाता है । इस तरह ''मैं'' से तत्क्षण मुक्ति पाना ही स्वाध्याय है। द्रष्टा और दृश्य के बीच के द्वैत के बिना दर्शन की प्रज्ञा स्वाध्याय की प्रक्रिया है। इसे स्वयं द्वारा स्वयं के लिए स्वयं के अभ्यन्तर में घटित होना होगा। केवल उधार में प्राप्त शब्दों एवं मुहावरों यथा–''आत्म अध्ययन'', ''आत्म–निरीक्षण'', ''आत्मज्ञान'', ''स्वयं को जानो'' आदि बोलने वाले, विशिष्ट वेशभूषाधारी या विशप या स्वामी उपाधिधारी तथाकथित आध्यात्मिक व्यक्ति का उधारी उपदेश सुनकर ''मैं'' या ''मेरा'' का अनुसरण या अनुकरण, स्वाध्याय नहीं है। व्यक्ति पहले पुण्यात्मा की कल्पना करता है, जो पापात्मा को घृणा की दृष्टि से देखता है। फिर उसे नियन्त्रित करने हेतु षड्यंत्र करता है और इसे महान आध्यात्मिक–प्रक्रिया माना जाता है। परन्तु पुण्यात्मा ही पापात्मा है, सन्त ही पापी है। ये दो नहीं हैं । निम्न ''मैं'' ही उच्च ''मैं'' को काल्पनिक खण्ड के रूप में प्रक्षेपित करता है। निम्न ''मैं'' स्वयं ही चेतना के अवयवों के क्षेत्र से निकला एक मिथ्या विखण्डन है, और इसलिए यह चेतना विभिन्न प्रकार के खण्डों एवं अवयवों से पूर्ण है। ''मैं'' का यह पूरा खेल एक झलक में देखा और समझा जा सकता है और अचानक इसका समापन हो सकता है। इसके लिए समय देना–''मैं'' और उसके संरक्षी–यन्त्ररचना के जाल में फँसना है। मैं अपनी आत्मसंरक्षी विधियों के साथ सदैव स्वयं को सततता प्रदान करने हेतु अननुमेय प्रकार के धूर्त्ततापूर्ण चालों में संलिप्त रहता है।

परन्तु मानव मस्तिष्क मन्द और विकृत हो गया है और वह अनचाहे अतीत के अनुबंधन के आधार पर 'समय' की अवधारणा में चला जाता है । इस प्रक्रिया से, छिपे हुए ''मैं'' द्वारा मन के प्रयास को प्रोत्साहित किया जाता हैं। इसीलिए पहले कहा गया है कि स्वाध्याय के लिए बहुत तीक्ष्ण मस्तिष्क चाहिए जो अनुकरण एवं अनुसरण से प्रदूषित न हो और न हि आध्यात्मिक मण्डी के जड़ ''गुरु'' का अनुसरणकर्त्ता हो। ऐसा तीक्ष्ण बुद्धि–वाला शीघ्र ही ''मैं'' रूपी भ्रांति को अस्वीकार कर देता है और वहाँ अस्वीकार करने वाला भी नहीं होता। वह यह देख पाता है कि अस्वीकार करने वाला भी ''मैं'' का छद्म रूप ही है जो निरहंकार–प्रज्ञा को कभी नहीं समझ सकता। निरहंकार का विचार, निरंहकार नहीं है बल्कि दूसरा अहंकार है। अहंकार को अस्वीकार करने का प्रयास एक नये अहंकार को जन्म देता है। तकनीकी संदर्भ में जहाँ कर्त्ता और कम भिन्न–भिन्न होते हैं, वहाँ प्रयास और समय अत्यन्त उपयोगी है परन्तु चित्तवृत्ति के संदर्भ में जहाँ कर्त्ता ही कम होता है, प्रयास और समय बिल्कुल अनुपयोगी है ।

अतः स्वाध्याय हमें मन से जीवन, प्रयास से प्रज्ञा, विभाजन से परम–पावन, स्थूल से सूक्ष्म, अहंकार से अस्तित्व, बुद्धि से प्रबोध, द्वैत से दिव्यता, विश्वास से आशीर्वाद, अवधारणा से बोध, प्रतिक्रिया से अनुक्रिया, भय से निर्भय, मिथ्याभिमान से सत्यनिष्ठा और चित्त से चैतन्य की ओर ले जाता है।

जय स्वाध्याय